- डंकेल प्रस्ताव -

आर्थिक गुलामी की ओर बढ़ते कदम

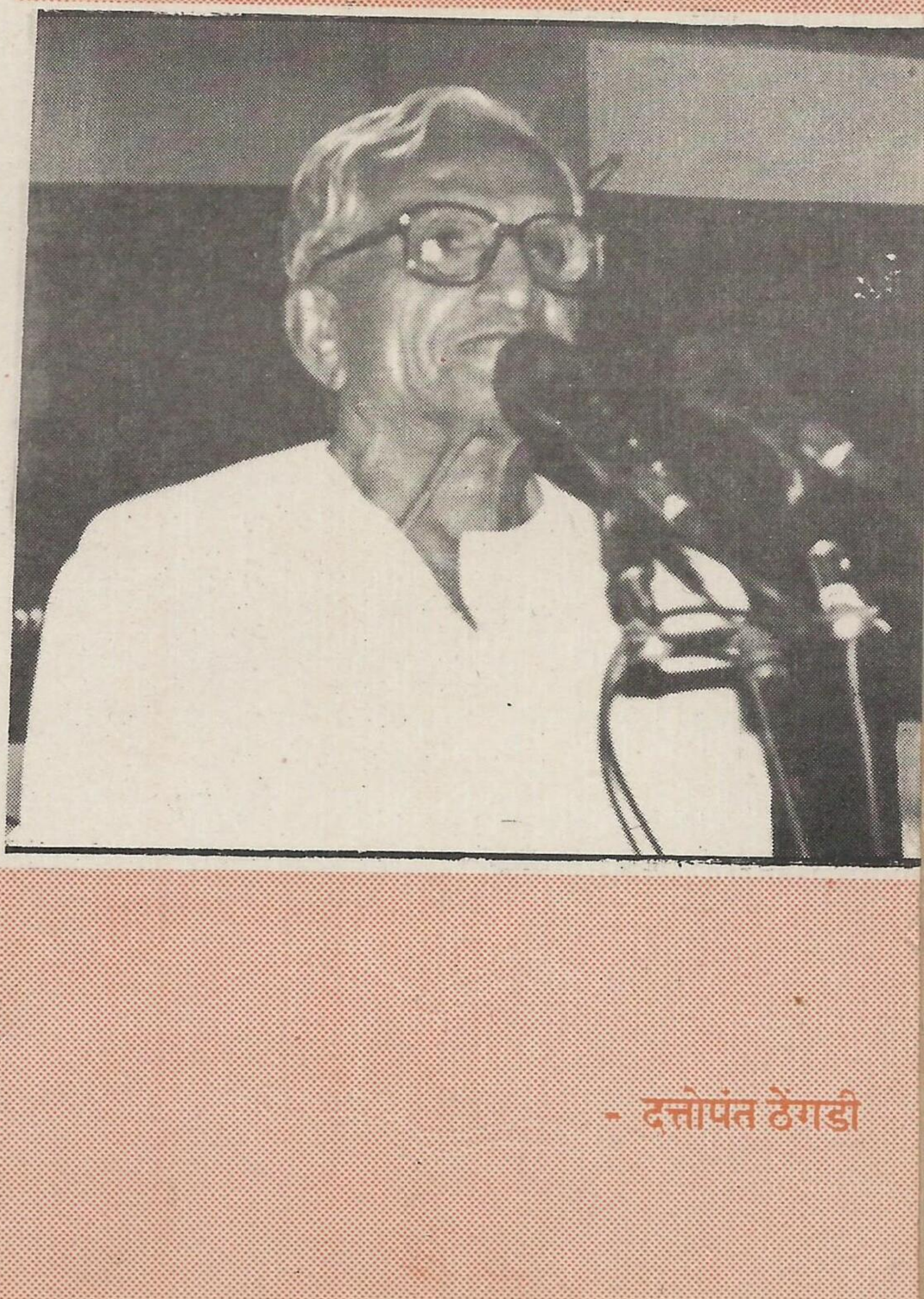

- दत्तोपंत ठेंगडी

॥ ॐ ॥

अपने यहां जो पद्धति है कि किसी भी सभा का प्रारंभ करते समय नेताओं को हार पहिनाना - मालाएं पहिनाना, उस पद्धति के अनुसार यहां भी हुआ है। इसमें कठिनाई थी कि भारतीय किसान संघ में कोई भी एक नेता नहीं है - यहां सामूहिक नेतृत्व है। इसलिये हमारे यहां नारा भी है कि 'हर किसान हमारा नेता है'। एक, दो, पांच-पचास नेताओं के भरोसे करोड़ों का किसान समाज अपना भविष्य ठीक नहीं कर सकता। क्योंकि नेता भी आखिर मनुष्य है - कभी फिसल सकता है - कभी विश्वामित्र हो सकता है - कभी बीमार हो सकता है - कभी 'रामनामसत्य' हो सकता है। तो, एक, दो, पांच-पचास नेताओं के भरोसे नहीं तो देश का हर किसान जागृत रहे - अखंड जागृत रहे - अपनी समस्याओं की दृष्टि से वह प्रशिक्षित हो - और ऐसे प्रशिक्षित किसान हर स्तर पर - ग्राम से लेकर राष्ट्रीय स्तर पर बार बार एकत्रित आकर विचार विमर्श करें और स्वयं अपना नेतृत्व करें - यही अपनी कल्पना है। इसलिये यहां कोई नेता नाम की कोई श्रेणी नहीं है - हर किसान हमारा नेता है। तो भी, मंच पर बैठे हैं, इसलिये ये माना गया कि ये हमारे नेता ही होंगे और नेताओं को हार पहिनाना चाहिये, इस दृष्टि से हम लोगों को हार पहिनाये गये। हार लेते समय मन में बड़ी आशंका थी। आज देश जिस चौराहे पर खड़ा है, उसे देखते हुए मन में आशंका उठती है कि कहीं ऐसा न हो जाये कि नेताओं को हार मिले और जनता हार जाए, देश डूब जाये - कहीं ऐसी परिस्थिति न आ जाए, क्योंकि ऐसे ही कगार पर आज देश खड़ा है।

आज की जो परिस्थिति है, उसमें कई समस्यायें आपके मन में है, यह मैं भी जानता हूं क्योंकि सबके साथ व्यक्तिगत बातचीत होती है इस कारण एक ही विषय लेकर एक सुसूत्र भाषण करना उपयुक्त नहीं रहगा, ऐसा मैं समझता हूं। आप सब लोगों के मन में जो विविध प्रश्न हैं अलग अलग ढंग के प्रश्न हैं, सभी समस्याओं का थोड़ा समाचार लेना, यही अधिक उपयुक्त रहेगा - और इस नाते कुछ बातें - अलग अलग बिन्दु में आपके सामने रखने का प्रयास करता हूं।

सरकार की गलत नीति

पहली बात यह है कि किसान आंदोलन के बारे में - १९४७ से ही सरकार

के द्वारा कुछ गलत-फहमी फैलाने का सुनियोजित प्रयत्न होता रहा है। किसानों की मांग है कि हमें लाभकारी मूल्य मिलना चाहिये - याने उत्पादन खर्चा और उस पर कुछ लाभांश मिले। लोगों का खयाल है कि ये हो ही नहीं सकता, इसीलिये सरकार यह नहीं दे रही है। किन्तु यह सच नहीं है। चतुर्थ पंचवर्षीय योजना के 'प्रियेम्बल' में स्पष्ट रूप से लिखा गया है किसानों को लाभकारी मूल्य नहीं देना चाहिये, क्योंकि किसानों को लाभकारी मूल्य देने से देश का आर्थिक ढांचा चरमरा जायेगा। वास्तव में सरकार का यह चिन्तन ही गलत है। सत्य यही है कि पूंजीवाद का आर्थिक ढांचा चरमरा जायेगा, लेकिन कहा गया कि देश का आर्थिक ढांचा चरमरा जायेगा। तो, किसानों को उनका मूल्य न देना यह सरकारी नीति है और इसलिये यह सोचना कि सरकार को हम ज्यादा समझायेंगे तो वह समझ जायेगी, ऐसी बात नहीं है।

भारतीय किसान संघ किसानों के लिये लाभकारी मूल्य की बात करता है। सरकार ने वही नीति चलायी है, जो अंग्रेज सरकार के जमाने में थी - 'फूट डालो और राज करो'। इसलिये किसानों के खिलाफ शहर के उपभोक्ताओं - ग्राहकों को भड़काया जाता है कि किसानों की मांगे पूरी हो जायेंगी तो आपके ऊपर कीमतों का बोझ बढ़ जायेगा - किसान तुम्हारा दुश्मन है! उधर खेतिहर मजदूर को बताया जाता है कि किसान तुम्हारा दुश्मन है - तुमको पूरा पैसा नहीं दे रहा - पूरी रोजी नहीं दे रहा है।

भारतीय किसान संघ एक जिम्मेदार राष्ट्रवादी संगठन है। 'हमारी मांगे पूरी हों, चाहे जो मजबूरी हो' - ऐसी गैर जिम्मेदारी की बात भारतीय किसान संघ नहीं करता। जब भारतीय किसान संघ ने यह मांग रखी तो हमने यह भी कहा कि यह मांग कैसे पूरी हो सकती है, इसका व्यावहारिक मार्गदर्शन करने की जिम्मेदारी हमारी है। हमने सरकार के सामने अपनी बात रखी और कहा कि यह हो सकता है। हमारे यहां जब योजनाएं शुरू हुई और जब इसमें महालनोबिस साहब का प्रवेश हो गया तो उसके बाद भारत की योजनाएं रूस का अनुकरण करने वाली योजनाएं रहीं। हमारी योजनाओं में प्राथमिकता का क्रम (Order of Priority) रूस के समान रहा - उन्होने अंतरिक्ष विज्ञान और अंतरिक्षा जो कि हर देश की प्राथमिकता रहेगी - के बाद बड़े उद्योगों को प्राथमिकता दी और कृषि तथा ग्रामीण विकास को सबसे अंत में रक्खा - इसका परिणाम रूस वालों को भुगतना पड़ा है। हर साल उनकी कृषि फेल होती थी और कम्युनिस्ट रूस को कॅपिटलिस्ट (पूंजीवादी देश) अमेरिका से

अनाज मंगवाना पड़ता था। तो, उस रूस का हमने अनुकरण किया। हम लोगो ने कहा कि आप रूस का अनुकरण करते हुए बड़े उद्योग और उद्योगपतियों को जो प्रश्रय दे रहे हैं - योजना में बड़ी धनराशि उसके लिये आबंटित की जाती है, यह प्राथमिकता का क्रम बदलकर वह पैसा और प्रश्रय कृषि तथा ग्रामीण विकास को देना चाहिये - हमें अपने कृषिप्रधान देश में कृपि और ग्रामीण विकास को ही अग्रक्रम देना चाहिये - अगर ऐसा किया गया तो देश का चित्र बदल जायेगा। आपको आश्चर्य होगा यह जानकर कि इस देश के छोटे से छोटे किसान को बिजली का जो रेट देना पडता है, उससे कम रेट में बिडला साहब को बिजली मिलती है। अब इससे और क्या अन्याय हो सकता है, इसका छोटा सा उदाहरण यह है।

योजना में अग्रक्रम बदलो

हम लोगों ने कहा कि योजना में अग्रक्रम बदल दीजिये - धन का जो आबंटन (allocation) बड़े उद्योग और उद्योगपतियों के लिये है वह कृपि और ग्रामीण विकास के लिये रखिये। फिर हम लोगों ने कहा कि Heavy Subsidy खेती में प्रयुक्त होनेवाली - बिजली, खाद, औषधि, बीज और खेती के औजार आदि सभी चीजों के लिये दीजिये - इस चीजों पर आप यदि उन्हे Heavy Subsidy देंगे तो उनका लागत मूल्य, उत्पादन का खर्चा (Cost of Production) घट जायेगा। उत्पादन खर्चा घट जायेगा तो फिर शहर के उपभोक्ताओं से ग्राहकों से, उनके ऊपर ज्यादा बोझ न बढाते हुए अपनी पूरी कीमत वसूल करना किसानों के लिये संभव हो सकेगा - इससे ग्राहक उपभोक्ता और किसान के बीच जानबूझकर पैदा किया गया संघर्ष भी अपने आप मिट जायेगा - वास्तव में यह संघर्ष और भेद सरकार की गलत नीति के कारण ही पैदा हुआ है। यदि अग्रक्रम बदलता है - बड़ी Subsidy अगर खेती में प्रयुक्त होनेवाली चीजों को उनके मूल में दी जाती है, तो उत्पादन खर्चा घट जाता है, इसलिये कीमतें भी घट जायेंगी - उपभोक्ताओं का नुकसान न करते हुए किसानों को पूरी कीमत मिल सकती है - और किसान को अगर पूरी कीमत मिल जायेगी तो वह अपने खेतिहर मजदूरों को भी पूरी रोजी दे सकेगा। यह कहना ठीक नहीं है कि मामूली खेतिहर मजदूर किसान को अपना दुश्मन समझता है। हां, यह सच है कि आज किसान उसे पूरी रोजी नहीं दे पा रहा है - किन्तु इसका कारण यह नहीं है कि वह उसे अपना दुश्मन मानता है या उसे भूखा मारना चाहता है लेकिन जब उसको ही पूरा पैसा नहीं मिल रहा - वह सोचता है कि इससे तो

वह अपने बाल-बच्चों का पेट ही पूरी तरह से नहीं पाल सकता तब इन मजदूरों को पूरी रोजी कहां से दूं? इसलिये वह नहीं दे पा रहा। माने, देने की इच्छा तो है, पर हैसियत नहीं है। यदि उसको अपने माल की पूरी कीमत मिल जायेगी तो आम किसान अपने खेतिहर मजदूर को बड़ी खुशी से पूरा पैसा देने के लिये तैयार होगा। हां, केवल ४ - ५ प्र.श. अतिस्वार्थी लोग जो हर समाज में होते हैं, मजदूरों को पूरी रोजी नहीं देंगे। किन्तु आम किसान इस प्रवृत्ति का नहीं है। खेतिहर मजदूरों को पूरी रोजी मिलने से किसानों के प्रति विरोध और संघर्ष की स्थिति भी अपने आप समाप्त हो जायेगी। इसलिये हम लोगों ने सरकार को आव्हान किया कि छह साल तक यह व्यवस्था कीजिये - छह साल के अंदर चित्र बदल जायेगा। लेकिन सरकार की हिम्मत नहीं है, और उसके कई कारण है। तो जहां हम मांग रखते हैं, तो वह कैसे पूरी हो सकती है, उसके लिये व्यावहारिक उपाय, इलाज भी हम सुझाते हैं। इसका एक उदाहरण केवल आपके सामने रखा है।

स्वदेशी का सही अर्थ

दूसरी बात है, स्वदेशी की। इसके बारे में भी तरह तरह की गलत फहमियां जानबूझकर पहले से फैलायी गयीं है। यह बताया जाता है कि ये स्वदेशीवाले बड़े दकियानूसी हैं - संकुचित, संकीर्ण मनोभाव रखते हैं - केवल अपने राष्ट्र का ही विचार करते हैं - अरे, आज तो दुनिया का विचार करना चाहिये - Globalisation का विचार करना चाहिये! कैसी विचित्र बात है, हम लोगों को आप Globalisation सिखा रहे हो? यहां तो, हमारे हिन्दुराष्ट्र के प्रारंभ से ही हमारे यहां Globalisation की संकल्पना है। जब कहा गया - 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' (आर्य याने सुशिक्षित - सुसंस्कारित) तो वह सम्पूर्ण विश्व का विचार था। जब कहा गया - 'वसुधैव कुटुम्बकम्' तो वह भी पूर्ण विश्व का ही विचार था। और, आप जैसे तंग नजरिया रखनेवाले पापी लोग हमको सिखा रहे हो कि दृष्टिकोण बड़ा उदार और विशाल होना चाहिये! यह हमें सिखाने का आपको क्या नैतिक अधिकार (Moral right) है? हम यह अच्छी तरह जानते हैं कि स्वदेशी का मतलब हम राष्ट्र तक संकुचित हैं, ऐसा नहीं है। हमारे प.पू. गुरुजी ने कई बार यह कहा कि विश्वशांति के लिये एक विश्वसंकल्पना की आवश्यकता है। एक विश्वसंकल्पना का अर्थ एक विश्व सरकार, एक विश्व-शासन नहीं - बल्कि हरेक राष्ट्र अपना अपना कारोबार ठीक ढंग से चलाये। हरेक राष्ट्र की अपनी अपनी संस्कृति है - उस संस्कृति

के अनुसार हरेक राष्ट्र अपनी अपनी प्रगति का मॉडल, नमूना बनाये। हरेक राष्ट्र ज्यादा से ज्यादा स्वयंपूर्ण - स्वावलंम्बी होने का प्रयास करे और ऐसे जो स्वायत्त - स्वयंशासित - स्वावलंबी - स्वयंपूर्ण जो विभिन्न देश हैं, वे समानता की भूमिका पर (on equal footing) एक दूसरे के साथ सहयोग करें, यह समझकर कि सारी मानवता एक परिवार है - उस परिवार के विभिन्न सदस्य याने ये अलग-अलग देश हैं - इस भावना के साथ एक दूसरे के साथ स्नेहपूर्ण सहयोग का व्यवहार करें और हरेक देश अपनी अपनी संस्कृति के अनुसार अपने अपने स्वदेशी का पुरस्कार करे - स्वदेशी हरेक देश ने अपनानी चाहिये - यही है स्वदेशी का मतलब। केवल अपने देश को बाकी देशों से अलग रखने के लिये स्वदेशी नहीं है। तो, ये जो तंग नजरिया वाला आरोप है, बिलकुल गलत है। हम जानते हैं कि निहित स्वार्थी तत्वों द्वारा जानबूझकर गलत आरोप लगाया किया जाता है।

विदेशी पूंजी के लम्बे हाथ . . . . .

विदेशी पूंजी के हाथ बहुत लम्बे हैं। बहुत पहले से सोचा गया - दूसरे महायुद्ध के पश्चात् अन्तर्राष्ट्रीय दबाव के कारण जब अपने अपने उपनिवेशों को स्वराज्य देना बाध्य हो गया, तब सफेद साम्राज्यवादी देशों को पहली बार इस बात का अहसास हुआ कि उनकी अर्थव्यवस्था अपने पैरों पर खड़ी नहीं थी। दिखता था कि ये बड़े सम्पन्न हैं, समृद्ध हैं, किन्तु उनकी यह सम्पन्नता और समृद्धि उपनिवेशों के शोषण के सहारे ही थी - अपने खुद के पैरों पर उनकी समृद्धि नहीं थी। इसके कारण बाकी देशों का शोषण कैसे करना, इसका विचार उन्हे करना पड़ा। इसलिये दूसरे महायुद्ध के प्रारंभ से ही नव स्वतंत्र देशों को, जिनको विकसनशील देश कहा जाता है, जिनको दक्षिणी देश कहा जाता है, ऐसे देशों को हम फिर किस तरह आर्थिक गुलामी में डाल सकते हैं, किस तरह उनका शोषण कर सकते हैं, इसका विचार शुरू हुआ और सोचा गया कि राजनीतिक दृष्टि से तो ये लोग स्वतंत्र हैं लेकिन आर्थिक दृष्टि से उनको गुलाम बनाना है तो ऐसी व्यवस्था करनी चाहिये कि तृतीय विश्व के सभी नव स्वतंत्र देशों में ऐसे ही लोगों को राज्यकर्ता के नाते लाया जाए जो सफेद साम्राज्यवादी देशों के लिये अनुकूल रहेंगे और जो राजसत्ता में आने के पश्चात अपनी जनता के साथ धोखा करते हुए, गद्दारी करते हुए सफेद साम्राज्यवादी देशों को अपनी जनता का शोषण करने की खुली इजाजत देंगे - ऐसे ही लोगों को नवस्वतंत्र देशों के शासन में लाने का प्रयास शुरू हुआ। हर जगह उन्होंने

प्रयास किया, उसका लम्बा इतिहास देने की यहां आवश्यकता नहीं है। जहां उनके लिये अनुकूल ऐसे शासक नहीं थे, वहां जबर्दस्ती से क्रान्ति की स्थितियां पैदा कर क्रान्ति के माध्यम से वहां की सरकारों को हिला दिया गया और अपने लिये अनुकूल नये लोगों को सरकार में लाया गया! यह केवल भारत का ही सवाल नहीं है। सारे तृतीय विश्व के देशों के लिये यह चल रहा है कि अपने अपने देशों की जनता के साथ गद्दारी करने के लिये और सफेद साम्राज्यवादी देशों को अपनी जनता का शोषण करने के लिये जो खुली इजाजत देंगे, ऐसे ही लोगों को सरकार में लाना - यह गोरखधंधा शुरू हुआ। उसी के हम भी शिकार हैं और बहुत सारे नवस्वतंत्र देश भी इसकी चपेट में आ चुके हैं।

आर्थिक गुलामी का जाल

यह तो १९४५ के बाद ही शुरू हो गया था - हमारे देश में १९४७ के बाद शुरू हुआ और प्रारंभ से ही यह आर्थिक गुलामी का जाल फैलाने का काम शुरू हुआ। मैं बहुत पुराना इतिहास नहीं दोहराना चाहता - पी.एल. ४८० का - जब आवश्यकता नहीं थी तब यहां अमरीका का लाल गेहूं क्यों लाया गया? यह बात छोड़िये। लेकिन मुझे स्मरण आता है कि १९६५ में, जिस समय 'इंडो-पाक कॅनाल ट्रीटी' हुई - वह पाकिस्तान के लिये अनुकूल और हिन्दुस्तान के लिये प्रतिकूल है, यह जानते हुए भी भारत सरकार ने उस पर हस्ताक्षर किये, उस समय प.पू. श्री गुरुजी ने यह वक्तव्य निकाला था कि जागतिक बैंक के दबाव में आकर, समझबूझकर आपने इस पर हस्ताक्षर किये हैं। विदेशी पूंजी के दबाव में आकर यदि इस तरह से झुकने की आदत आपको लगती है, तो अपने देश में आर्थिक गुलामी आने में देर नहीं लगेगी - १९६५ में पूजनीय गुरुजी ने यह इशारा किया था - यह चेतावनी दी थी। आगे चलकर तीन माध्यमों से यहां आर्थिक गुलामी लाने का प्रयास चला। ये तीन माध्यम थे - आन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष, जागतिक बैंक और बहुराष्ट्रीय कम्पनियां। यह संघसृष्टि के लिये अभिमान की बात है, लेकिन आनंद की बात नहीं है कि विदेश की आर्थिक गुलामी यहां आ रही है। इसकी सर्वप्रथम सावधानी का इशारा, संघ सृष्टि का ही एक अंग भारतीय मजदूर संघ ने १९८२ में दिया। जब यह विषय किसी के दिमाग में नहीं था - उस समय भारतीय मजदूर संघ ने यह चेतावनी दी कि यहां विदेशी आर्थिक साम्राज्य आ रहा है। तीनों माध्यम कई दशकों से काम कर रहे थे। यहां भी धीरे धीरे आर्थिक साम्राज्यवाद के पॉकिट्स फॉरेन कोलेबरेशन के जरिये आ रहे थे। हम लोग चेतावनी देते थे, लेकिन कोई सुनने की

मनस्थिति में नहीं था। लेकिन पिछले ३-४ सालों में यह मामला यहां और दुनिया में बहुत जोरों से उछलकर सामने आया है। क्या कारण है, समझने की आवश्यकता है।

आत्मसमर्पण क्यों?

ऐसा है कि आर्थिक शोषण तो सभी देशों का चल रहा था। अब इसमें कई लोग ऐसा मानते हैं कि भाई, अगर विदेशी पूंजी का विनियोजन (Foreign Investment) नहीं होगा तो हम नव-स्वतंत्र देश है, हमारा विकास कैसे हो सकता है? जब हम विदेशी पूंजी के विनियोजन का विरोध करने लगे तो लोगों ने कहा, इनको अर्थशास्त्र वगैरे का कोई ज्ञान नहीं है - प्रगत देशों में भी Foreign Investment होती है और ये लोग अपने देश में विदेशी पूंजी का विनियोजन नहीं चाहते, ये तो देश को दो-तीन शताब्दियां पीछे धकेलना चाहते हैं। यह बात सही नहीं है। हमने कहा, विदेशों में, प्रगत देशों में Foreign Investment किस तरह से होती है, यह हमें बताईये। हम जानते हैं कि प्रगत देशों में भी Foreign Investment होती है किन्तु It is on the terms of the host country - जिस देश में पूंजी लगायी जा रही है, उस देश की सुविधा के अनुसार होती है। हां, यह हो सकता है कि वहां समानता के आधार पर Negotiations होते हैं और इनमें कुछ लेन-देन चलती है, लेकिन जिस देश में पूंजी लगायी जा रही है, वहां के राष्ट्रीय हित को प्राथमिकता देकर, उस तरह के समझौते होते हैं। यहां ऐसी कोई बात नहीं है - यहां तो आत्मसमर्पण है। किसी ने कहा कि आत्मसमर्पण नहीं करेंगे तो वह पैसा नहीं देंगे। अरे, हम पूछना चाहते हैं कि वे पैसा दे रहे हैं तो क्या हम पर उपकार कर रहे हैं? यहां पैसा लगाना उनके हित की बात है, इसलिये वे पैसा लगा रहे हैं। और Negotiations के लिये जाने वाले हमारे मिनिस्टर और सेक्रेटरी यदि कड़ा सख्त Strict Attitude अपनाते हैं तो बराबर यशस्वी हो सकते हैं।

कोरिया का साहस

इस सन्दर्भ में एक छोटा सा उदाहरण दूंगा। हम जानते हैं कि कोरिया एक छोटा देश है। जैसे बाकी देशों पर, वैसे कोरिया पर भी अमरीका ने दबाव डाला कि हम आपके देश में पैसा लगाना चाहते हैं। लेकिन कहां? तो उन्होंने कहा कृषि में लगाना चाहते हैं। तो उस समय कोरिया के सायन्स टेक्नालॉजी एण्ड ह्यूमन डेव्हलपमेंट अफेयर्स के वॉन हा नामक मंत्री ने, जो देशभक्त तो थे ही, बुद्धिमान भी थे, चर्चा के लिये आये अमरीकी लोगों से कहा कि हमारे देश में

आपकी पूंजी का हम स्वागत करेंगे, पर हमारी शर्तों पर। हमारी कृषि में अमरीका को हम पैर नहीं रखने देंगे - लेकिन हां, हमें आवश्यकता है आपके इन्वेस्टमेंट की - जहाज बनाने के कारखाने के लिये, ऊर्जा के लिये आवश्यकता है - वहां पैसा डालिये। अमरीका ने कहा, नहीं हम हमारी शर्तों पर आयेंगे, कृषि में प्रवेश करेंगे, वर्ना हम पैसा नहीं देंगे। व्हॉर्न हा ने कहा, नहीं तो आप अपना पैसा ले जाईये - हमें नहीं चाहिये आपका पैसा। कोरिया को एक स्टील इंडस्ट्री खड़ी करनी थी। पोहांग स्टील इंडस्ट्री उसका नाम है। उन्होने कहा कि हम अपने ढंग से इसको खड़ी करेंगे। विदेशी कम्पनी ने दबाव डाला कि नहीं, यह हमारी शर्तों पर खड़ी करनी होगी - कोरिया ने दृढता से कहा, आपका पैसा उठा लीजिये - हम अपने लोगों से पैसा खड़ा करके इंडस्ट्री खड़ी करेंगे। आज वही सुप्रसिद्ध पोहांग इंडस्ट्री स्वावलंम्बन के आधार पर कोरिया में काम कर रही है। कोरिया जैसे छोटे से देश के सामने अमेरिका को झुकना पड़ा - कृषि के क्षेत्र में जाने का आग्रह छोड़ना पड़ा। कोरिया की शर्तों पर, वो कहते थे उस क्षेत्र में पूंजी लगाने के लिये अमरीका को बाध्य होना पड़ा। कोरिया जैसा छोटा देश यदि ऐसा कड़ा रुख अपनाकर अपने राष्ट्रहित की चिंता कर सकता है तो हमारा बड़ा देश ऐसा रुख क्यों नहीं अपना सकता? यह बात नहीं कि हम ऐसा रुख नहीं अपना सकते। लेकिन यह बड़े दुर्भाग्य की बात है कि हमारे राज्यकर्ता बेचे गये हैं - यह बहुत अपमानजनक ऐसी बात मैं कह रहा हूं - डिफेमेटरी - फॉर व्हिच आय कॅन बी प्रोसीडेड अगेंस्ट - डिफेमेटरी स्टेटमेन्ट है कि राज्यकर्ता खरीदे गये हैं और इसके कारण देश के साथ धोखा करते हुए देश को बेचने का काम चला - फॉरेन कोलैबरेशन एग्रीमेन्ट्स हुए।

यह चल ही रहा था, इतने में एक नया बखेडा खड़ा हुआ। जिसका नाम है, डंकेल। यह डंकेल क्या है, दो मिनट में उसका इतिहास बताना भी आवश्यक है। दूसरा महायुद्ध समाप्त हो जाने के पश्चात, जैसा मैंने कहा कि सफेद साम्राज्यवादी देश बाकी सब देशों का शोषण करने की योजनाएं बना रहे थे - इसी इरादे से उन्होने अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिये एक योजना बनाई - उसे संस्था कहा जाए, संगठन कहा जाये या आंदोलन कहा जाये - उन्होने भी अभी निश्चित नहीं किया है कि इसे क्या कहा जाए - लेकिन 'जनरल एग्रीमेंट ऑन टेरिफ एण्ड ट्रेड' नामक एक व्यवस्था उन्होने शुरू की - किसलिये शुरू की, तो कहा गया अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिये यह व्यवास्था शुरू की गई है। हम जब

हमारे प्रगतिशील लोगों से बात करते हैं तो वे कहते हैं, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एक नया फिनॉमिना है, एक नई प्रक्रिया है।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार और भारत

इस बारे में, अपने यहां कुछ नहीं था, ऐसी बात नही है। जैसा अभी हमारे बोकरेजी ने कहा कि अर्थशास्त्र में जितने भी प्रकार और श्रेणिया हैं, जितनी Catagories हैं - वह सारी Catagories - भले ही वह प्राथमिक स्वरूप में हो, उसका दर्शन हमें अपने वेदों में होता है। लाभ हो, वेतन हो, मजदूरी हो, ब्याज हो, बाजार हो - सभी बातों का उल्लेख, प्राथमिक स्वरूप में क्यों न हो, हमें वहां मिलता है। बाद में, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के बारे में महाभारत के शांतिपर्व में विस्तृत उल्लेख है, विदुर नीतिमें भी इसका विस्तृत विवरण है, और इसके कारण हमारे यहां के शास्त्राधारित जो राज्यकर्ता थे, वे इस पर चलते भी थे। छत्रपति शिवाजी के समय यही अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार चलता था - चार देशों के, पोर्तुगीज, डच, फ्रेन्च और इंग्लिश व्यापारी यहां आकर व्यापार करते थे। इनमें से पोर्तुगीज व्यापारियों ने अपने मेट्रोपोलिटन में भेजे पत्र यहां प्रकाशित हुए हैं। ये व्यापारी कहते हैं कि हिन्दुस्तान के सभी राज्यकर्ता बड़े समझदार हैं - उनसे हमें कोई तकलीफ नहीं है - वो हमारी और अपने प्रजाजनों की सीधे मुलाकात होने देते हैं - हम हमारा माल उनको बेचते हैं - सौदा हो गया तो वो हमें पैसा देते हैं - हम माल देते हैं, पैसा लेते हैं - सीधा मामला चलता है - लेकिन एक राज्यकर्ता बड़ा बदमाश है, जिसका नाम है शिवाजी - वह अपने प्रजाजनों के साथ हमारी मुलाकात ही नहीं होने देता - वह कहता है, मेरे साथ बात करो - अपने प्रजाजनों की कौनसी आवश्यकता है, जो हमारे द्वारा पूरी हो सकती है, इसका पूरा अंदाज वह लेता है - वह स्वयं हमारे साथ बात करता है - Hard nut to crack - उसके साथ Bargain करना भी कठिन है, लेकिन Bargain हो जाता है सौदा होता है, हमारा इतना माल हम देंगे, इतनी कीमत आप हमें देंगे - सौदा तय हो जाने के बाद भी वह रुकता नहीं है - वह कहता है कि अपना माल रखो और अपनी कीमत ले जाओ, लेकिन पैसों में नहीं, हम पैसे नहीं देंगे - उतने कीमत की हमारी सुपारी और नारियल आपको खरीदना पड़ेगा। नहीं खरीदते तो यह सौदा नहीं होगा। खैर, मेरे कहने का तात्पर्य यही है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार हमारे लिये कोई नयी चीज नहीं है। शायद, जो अंग्रेजी पढ़े-लिखे होने के कारण स्वदेश के बारे में घोर अज्ञान रखते हैं - 'इंग्लिश एजुकेटेड' लोगों के लिये नई बात हो सकती है - लेकिन हमारे यहां

इसका शास्त्र विकसित था।

'गॅट' की आड़ में . . . . .

लेकिन अभी जो शास्त्र आया है, वह क्या है? Gatt जो है, इसका काम १ जनवरी १९४८ को शुरु हुआ और उसके वार्ता के दौर Round of Negotiations चले। उसमें एक ही आयटेम अजेन्डा पर था कि माल का व्यापार - International Trade in goods. याने वस्तुओं का व्यापार। यह एक ही चीज अजेन्डा में थी। उसमें भी गैर सफेद देशों पर, तृतीय विश्व के देशों पर अन्याय होता था। १९७२ में, तृतीय विश्व के कुछ देशों ने एकत्रित आकर सफेद साम्राज्यवादी देशों के लोगों से प्रार्थना की कि अन्तर्राष्ट्रीय के नियम जो आप 'गॅट' द्वारा बनवा रहे हैं, इसमें हमारे साथ अन्याय होता है - असमानता के आधार पर सारी शर्तें होने के कारण हमारे लिये अन्यायकारक है, अतः ये शर्तें समानता के आधार पर होनी चाहिये। ९ साल के बाद १९८१ में मेक्सिको के कुनकुन में एक कान्फ्रेन्स सफेद साम्राज्यवादी देशों की हुई। जिसमें उन्होने कहा कि, यह बात सही है कि आप पर अन्याय हो रहा है, लेकिन अब 'ग्लोबलाइजेशन' इस अवस्था में आकर पहुंचा है कि आपके साथ न्याय नही हो सकता - आपको बर्दाश्त करना होगा। तो भी लोग बर्दाश्त करते थे, क्यों कि बर्दाश्त के बाहर नहीं था।

यह तो शूर्पनखा है . . . . .

पहले छह दौर में तो एक ही बात थी - टॅरिफ रिडक्शन - याने उधर से आने वाले माल पर कितनी ड्यूटी लगाना, कितना टॅरिफ लगाना। सातवें दौर में एक नयी बात लायी - Non Tarrif measures. लोगों ने पूछा यह क्या बात है? तो उन्होने कहा, कोई बात नहीं - लेकिन इसके ऊपर झगड़ा नहीं हुआ। पिछले तीन-चार साल में झगड़ा क्यों हुआ? यह समझना चाहिये। लोग कहते हैं, डंकेल में एक-एक बात क्या लिखी गई है, जरा हमको बताईये। इसकी कारण मीमांसा समझनी चाहिये। अमरीका की अर्थ-व्यवस्था नीचे जा रही है। कई लोग अभी भी समझते हैं कि अमेरिका आर्थिक दृष्टि से बड़ा प्रबल है। प्रबल रहा है, यह बात सही है। लेकिन यह बात भी सही है कि उसकी अर्थ व्यवस्था खोखली होती जा रही है। काफी कर्जा उसके ऊपर है - वहां बेकारी बढ़ रही है - मुद्रास्फीति भी बढ़ रही है और उससे भी ज्यादा, जहां तक इंटरनेशनल ट्रेड का सम्बन्ध है, उसकी स्पर्धा क्षमता (Competetiveness) भी कम हो रही है। चार-पांच साल पहले उनके खयाल में आया कि 'गॅट' में केवल

माल के व्यापार का ही विचार होता है - उसमें अब तक अमरीका सबसे स्पर्धा करती हुई नम्बर एक पर थी। बाद में कई वस्तुओं के मामले में वह पीछे हटने लगी। उसको Compensate करने के लिये Trade in Services लायी जाये - सर्विसेज् में हम स्पर्धा क्षमता में हैं। सर्विसेज् का मतलब होता है - ट्रान्सपोर्टेशन, एजुकेशन, हेल्थ, फायनेन्शियल इन्स्टीट्यूशन्स - ये जो सारी सर्विसेज़ हैं, इसकी स्पर्धा क्षमता में हम नम्बर एक पर हैं - इसलिये ट्रेड इन सर्विसेज़ लाने का उन्होने सुझाव दिया। विकासशील देशों ने कहा कि साहब, यह तो नहीं था Original में। 'गॅट' की शर्तों में सेवाओं की बात नहीं थी - तो अमरीका ने कहा कि पहले यह बात शामिल नहीं थी, यह बात सही है लेकिन अब Globalisation की डिमाण्ड है। ग्लोबलाईजेशन की मैं यहां विस्तार से चर्चा नहीं करता - सिर्फ इतना ही कहूंगा कि Globalisation शूर्पनखा के समान है, जो बाहर से बहुत सुंदर दिखाई देती है, लेकिन अंदर से अत्यंत दुष्ट-राक्षसी के समान क्रूर है, दुष्ट है।

अमरीकी दादागिरी!

गैर-सफेद देशों ने कहा कि पहले इसकी परिभाषा तो कीजिये - आखिर सेवा का व्यापार यह क्या चीज है, तो साम्राज्यवादी देशों ने कहा, अरे भाई Defination व्याख्या के चक्कर में जायेंगे तो उसमें ३-४ साल निकल जायेंगे - अभी इतना तो करो कि Negotiations शुरू कर दो In course of Negotiations defination will be evolved. कुछ देशों ने कहा कि आप जो सुझाव दे रहे हैं, उसका हमारी अर्थव्यवस्था पर क्या भला-बुरा परिणाम होता है, इसके लिये हमारे देश से Statistics मंगवाने पडेंगे। गुंडागर्दी - दादागिरी करने वाले देशों ने कहा कि आप Statistics इकट्ठा करते करते ३-४ साल लगा देंगे - Globalisation अब राह नहीं देख सकता - हर हालत में Negotiations अब शुरू होने चाहिये। वहां कैसी दादागिरी चलती है, इसका यह एक उदाहरण है।

आगे चलकर अमरीका के यह ख्याल में आया कि कुल मिलाकर उनकी अर्थव्यवस्था इस तरह नीचे जा रही है कि वह कई सेवाओं में पिछड़ गया है। यह जब दिखाई दिया तो उनको एक सर्वंकष योजना बनानी पड़ी, जिसका पूरा विवरण यहां देने की आवश्यकता नहीं, लेकिन ट्रेड इन सर्विसेज के अलावा तीन नये आयटेम वार्ता की मेज पर आये। ट्रेड इन ट्रेड रिलेटेड इंटेलेक्चुअल प्रापर्टी राईट्स, ट्रेड इन ट्रेडरिलेटेड इन्व्हेस्टमेंट मेजर्स और कृषि

- ये तीन विषय आये। उसके तफसील में जाना यहां संभव नहीं लेकिन मैं यहां कहूंगा कि इस बात को यदि स्वीकार किया जाता है तो हमारे यहां हमारी कृषि नहीं रहेगी - हमारे उद्योग नहीं रहेंगे, हमारे रिसर्च नहीं रहेंगे - हमारी अर्थ व्यवस्था नहीं रहेगी।

मुक्त व्यापार कहां है?

आज मुक्त व्यापार की बड़ी प्रशंसा की जाती है - फ्री ट्रेड होनी चाहिये। जरा बताओं तो आज मुक्त व्यापार कहां चल रहा है? अमेरिका बाकी सारे देशों को, युरोप के देशों को भी कह रहा है कि मुक्त व्यापार Free Trade होना चाहिये। लेकिन अमरीका स्वयं अपने देश में Free-Trade के लिये तैयार नहीं - अमेरिका संरक्षण का (Protectionism) का अवलम्बन कर रही है। हमारा क्या, युरोप के माल को भी वह अपने यहां नही आने देती - बाधा पैदा कर रही है और हमें बता रही कि मुक्त व्यापार होना चाहिये - हमें बता रही कि खुली आयात होनी चाहिये। अमरीका में खुली आयात नहीं हो सकती और हमें बता रही कि खुली आयात होनी चाहिये - हमें बताया जा रहा है कि आपके किसानों को सबसिडी नहीं देनी चाहिये और उधर अमेरिका ने अपने किसानों की सबसिडी बढाई है! माने, अमरीका के लिये स्टैण्डर्ड अलग है और बाकी देशों के लिये स्टैण्डर्ड अलग है। और इसके कारण उन्होने जो ऐसे नियम बनाये जिसका उल्लेख सुपर ३०१ और स्पेशल ३०१ के नाम से होता है। १९८८ में उनका जो Omnibus Competetive Act बना उसमें ये ऐसे सेंक्शन्श (प्रावधान) रखे गये हैं कि अमरीका के माल की खुली आयात आपके देश में होनी ही चाहिये - अगर आप अमरीकी माल के लिये खुली आयात नहीं रक्खेंगे तो आपके खिलाफ सेंक्शन्स लगाये जायेंगे। आपके खिलाफ आर्थिक बहिष्कार का कदम उठाया जायेगा। इस प्रकार हमारे आयात और निर्यात के बारे में अमरीका एक तरह से ब्लेक मेलिंग का काम कर रही है। हमें सिखा रही है कि मुक्त व्यापार यह एक अच्छी चीज है!! वास्तव में मुक्त व्यापार यह कोई सिद्धान्त नहीं है। जैसी जिसकी सुविधा हो, इंडस्ट्रियल रिव्होल्यूशन के पहले इंग्लैण्ड मुक्त व्यापार का घोर विरोधी था, क्योंकि जर्मनी यह सबसे प्रबल था और जर्मन माल ब्रिटिश मार्केट में बेचा जाता था - इन्होने कहा कि खुला व्यापार अच्छा तत्व नहीं है - संरक्षण होना चाहिये। जब इंडस्ट्रियल रिव्होल्यूशन हो गई तो इंग्लैण्ड का माल सस्ता और अच्छा निकलने लगा - तब इन्होने कहा कि यह बड़ा पवित्र सिद्धान्त है - मुक्त व्यापार होना

चाहियें। मानो, जो सुविधानजक हो, वही कानून। ये कोई सिद्धान्त नहीं है। आज कहीं भी मुक्त व्यापार नहीं चल रहा है।

डंकेल के खतरे . . . . .

यदि डंकेल सुझाव माने जाते हैं तो हमारे उद्योगों में विदेशी पूंजी को मुक्त प्रवेश मिल जायेगा। आज ही हमारी अर्थ व्यवस्था ऐसी है कि उनकी आवश्यकताएं अलग है और हमारी आवश्यकताएं अलग हैं। उनकी आवश्यकता है कि कम से कम लोगों के द्वारा ज्यादा से ज्यादा उत्पादन करना और हमारी आवश्यकता है कि ज्यादा से ज्यादा लोगों को रोजगार देना। इसलिये गांधीजी ने कहा था Not mass production but production by masses. हमारी आवश्यकताएं अलग अलग हैं। देश के देश में भी ज्यादा लोगों को रोजगार मिले इसलिये छोटे उद्योगों को संरक्षण देना आज हमारे लिये बाध्य हो गया है। जैसे कपड़ा उद्योग मिलों के साथ खुली स्पर्धा रही तो लाखों बुनकर बेकार हो जायेंगे - भुखमरी के शिकार होने लगेंगे। इसलिये व्यवस्था करनी पड़ी कि कुछ Line of demarcation की जाए - ऐसा ऐसा कपड़ा है, वह बुनकरों के लिये संरक्षित रखा जाये - ऐसा कपड़ा है जो Power loom के लिये संरक्षित रखा जाए - बाकी कपड़ा मिलें पैदा कर सकें। देश में भी संरक्षण की आवश्यकता है। ये जो हमारा परम्परागत क्षेत्र (Traditional Sector) है - जो परम्परागत उद्योग चलते आये हैं - उनके बारे में यह तथ्य बहुत सारे पढ़े लिखे लोगों को मालुम नहीं है और वे समझते हैं कि विदेशी पूंजी Sophisticated Industry से ज्यादा मिलती है जबकि असलियत यह है कि ७० प्र.श. विदेशी पूंजी हमारे इन परम्परागत छोटे उद्योगों से आज हमारे देश में आ रही है। जरा सोचिये, यदि विदेशी पूंजी को खुला प्रवेश मिला तो क्या यह परम्परागत उद्योग टिक सकेंगे? इनकी तो बात ही क्या है, मध्यम उद्योग भी नहीं टिक सकेंगे और केवल मध्यम उद्योग ही क्यों जहां टोमको, थम्सअप और गोदरेज जैसे बड़े उद्योग नहीं टिक सकते - तो ये लोग कहां तक टिक पायेंगे! अभी तक देशी उद्योगों को यह वहम था कि शायद विदेशी उद्योगपति अपने को पार्टनर बनायेंगे - जुनियर पार्टनर बनायेंगे - हमारी कुछ हैसियत रहेगी - लेकिन अब वे भी मांग कर रहे हैं - प्रधानमंत्रीजी से फिकी ने मांग की है कि साहब ये विदेशी पूंजी से हमें जरा संरक्षण दीजिये नहीं तो हम धुल (Wash out) जायेंगे। डंकेल के प्रस्ताव स्वीकार करने पर विदेशी पूंजी को खुला प्रवेश मिल जायेगा तब क्या आप समझते हैं कि हमारे ये सारे उद्योग, हमारी सारी

सर्विसेस - हमारे सारे जो, राष्ट्रीयकृत बैंक हैं वे सभी विदेशी बैंकों के सामने टिक पायेंगे? ये सब बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के हाथों में चले जायेंगे।

किसानों की पूरी बर्बादी . . . . . !

और, जहां तक किसानों का सम्बन्ध है, उनके लिये तो पूरी बर्बादी है। यहां पेटेन्ट लॉ हैं - १९७० का हमारा पेटेन्ट लॉ है। अमरीका का भी पेटेन्ट लॉ है, जो यहां लागू हो जाये, ऐसा वे समझ रहे हैं - अन्तर क्या है? यह समझ लेना चाहिये। पेटेन्ट का मतलब होता है कि कोई भी वैज्ञानिक, व्यक्ति या संस्था यदि कोई नयी खोज करती है तो उस खोज के लिये, कुछ सालों तक उस व्यक्ति को उस वस्तु पर एकाधिकार देना - मुआवजे के नाते - इसको पेटेन्ट कहा जाता है। हमारे और उनके पेटेन्ट लॉ में अन्तर यह है कि हमारे पेटेन्ट लॉ में आम तौर पर ५ साल से ७ साल तक का पेटेन्ट हो सकता है; और उनके यहां २० साल से २५ साल तक का पेटेन्ट हो सकता है - माने, पूरी पीढी उसमें बर्बाद हो जाती है। दूसरा अन्तर यह है कि हमारे यहां पेटेन्ट लॉ में प्रक्रिया का पेटेन्ट होता है, उत्पादन का पेटेन्ट नहीं होता। Process का पेटेन्ट होता है Product का पेटेन्ट नहीं होता। मान लीजिये, च्यवनप्राश है। गुरुकुल कांगडी ने एक विशेष प्रक्रिया से च्यवनप्राश बनाया - उस प्रक्रिया का पेटेन्ट हो सकता है। Product जो है - च्यवनप्राश, उसका पेटेन्ट हमारे यहां कानून के अंदर नहीं हो सकता। जिसका अर्थ यह है कि कोई भी दूसरा व्यक्ति या संस्था दूसरे किसी प्रक्रिया से अगर च्यवनप्राश बनाता है तो उसको बनाने का, मार्केट में लाने का, बेचने का और उस पर मुनाफा लेने का अधिकार है। तो उत्पादित वस्तु का नहीं, प्रक्रिया का पेटेन्ट हमारी विशेषता है।

पेटेन्ट का झमेला

अमरीका में तो उत्पादित वस्तु का ही पेटेन्ट है। अर्थात च्यवनप्राश का आपने पेटेन्ट ले लिया दो दूसरा कोई भी व्यक्ति अन्य किसी भी प्रक्रिया से च्यवनप्राश नहीं बना सकता। और ये पेटेन्ट उन्होने कहां कहां लागू किये हैं? हमारे कानून में वनस्पति, पेड़ पौधे - इनके पेटेन्ट की कोई व्यवस्था नहीं है - उनके यहां इसके भी पेटेन्ट हैं। इसका मतलब यह है कि हमारे यहां के वृक्ष-वनस्पति यदि वे लेकर, अपने देश में जाकर कहते हैं कि प्रयोगशाला में हमने इसको ट्रीटमेन्ट दिया है और चूंकि इसमें से हमने कोई Varaiety पैदा की है तो इस वनस्पति पर, इस पेड पर हमारा ही पूरा अधिकार हो गया - २० साल तक उनका अधिकार हो जायेगा। अरे, हमारे पूर्वजों ने १५ हजार साल

तक ये वृक्ष, पेड़, पौधे और वनस्पतियां बढ़ाई - इसी के आधार पर यहां आयुर्वेद और बाकी विज्ञान हमारे यहां विकसित हुए। १५ हजार साल तक हमने जो विज्ञान-शास्त्र विकसित किये उसके लिये हमारे पास पेटेन्ट नहीं और तुम अपनी लेबोरेटरी में ले जाते हो और दावा करते हो कि इसे हमने ट्रीटमेन्ट दिया है इसलिये अब इस पर हमारा अधिकार है - यह हमारा पेटेन्ट है! परिणाम क्या होगा? हमारी सारी वनस्पति उनके हाथों में, उनके अधिकार में रहेगी और उनकी अनुमति के बगैर हम यहां उगा नहीं सकते - और जो उगाई जायेंगी उसके उपर अमरीका का अधिकार रहेगा। ये ऐसे राक्षसी लोग हैं कि उन्होने प्राणियों और पशुओं पर भी पेटेन्ट लागू किया है। अर्थात् हमारे गाय का, भैंस का, बकरी का, और चूहों का भी पेटेन्ट हो सकता है। एक बार अगर वे कहते हैं कि आपके यहां की गाय और चूहा - उसको लेबोरेटरी में ले जाकर उसको ट्रीटमेंट देते हैं तो वे उनके हो गये! आपकी गाय पर आपका अधिकार नहीं - गायके बछडे पर, आपकी बकरी पर, आपके चूहों पर आपका अधिकार नहीं। वे कहेंगे, उनके हुकुम के मुताबिक, उनकी आज्ञा के मुताबिक आपको चलना पड़ेगा।

आपके बीज पर आपका अधिकार नहीं रहेगा। हमारे यहां आम तौर पर ऐसी पद्धति है कि किसान एक फसल आने के बाद उसी में से कुछ बीज अलग रख देता है और अगली फसल वह इस बीज के सहारे निकालता है। लेकिन बीज का पेटेन्ट अमरीका ले लेगा और फिर कहेगा कि यह हमारा पेटेन्ट है। आपको अपने बीज के सहारे दूसरी फसल निकालने का अधिकार नहीं है। दूसरी फसल अमरीकन बीज के ही सहारे निकालनी पड़ेगी और अमरीका कहेगी उस कीमत पर वह बीज खरीदना पड़ेगा। उनके गुप्तचर रहेंगे यह देखने के लिये कि क्या यहां पेटेन्ट कानून का उल्लंघन तो नहीं हो रहा? और, आपने यदि अपनी पहली फसल में से कुछ बीज बाजू में रखकर उससे दूसरी फसल निकाली तो उनके गुप्तचर उनको खबर देंगे - वाशिंगटन से दिल्ली खत आ जायेगा कि अमुक अमुक स्थान के किसानों ने पेटेन्ट कानून का उल्लंघन किया है - अपने ही बीज के सहारे अगली फसल निकाली है, हमारा बीज न लेते हुए - अतः उनको दंड होना चाहिये -. उनको जेल में भेजना चाहिये - दिल्ली को उसके मुताबिक चलना पडेगा। हर कानून में यह व्यवस्था रहती है कि आपने मुझ पर आरोप लगाया कि मैं चोर हूं तो मुझे चोर सिद्ध करने की जिम्मेदारी भी आपकी ही होगी। डंकल कहते हैं, ऐसा नहीं है। हमारी बहुराष्ट्रीय कम्पनी दिल्ली को

लिखेगी कि अमुक स्थान के किसानों मे पेटेन्ट का उल्लंघन किया है आप उनको दंड दो। और, हमने उल्लंघन नहीं किया यह हमें ही सिद्ध करना पड़ेगा - उनके ऊपर जिम्मेदारी नहीं - वे तो बस पत्र लिखकर मुक्त हो गये!

बड़े फॉर्मस् का शिगूफा

हमारे बीज के सहारे हम अपनी खेती नहीं चला सकते, केवल इतनी ही बात नहीं है। अभी से यह चर्चा शुरू कर दी है कि दुनिया का कल्याण होना चाहिये - इसके लिये दुनिया में अनाज ज्यादा होना चाहिये। छोटे-छोटे किसान रहे तो फिर अनाज ज्यादा नहीं हो सकता - इसलिये बड़े फार्मस की आवश्यकता है। इसलिये यह योजना आ रही है कि छोटे किसानो को छुट्टी दी जाए - उन्हे थोड़ा थोड़ा मुआवजा देकर उद्योगपतियों को कृषि के क्षेत्र में, ग्रामीण क्षेत्र में लाया जाय - पहले देशी उद्योगपतियों को, बाद में विदेशी कम्पनियों को लाकर बड़े फॉर्मस् यहां तैयार किये जांय! जितने किसान मजदूर के नाते काम करेंगे - उन्हे कुछ मुआवजा मिलेगा - जमीन हाथों से निकल जायेगी। बड़े फॉर्मस् यहां तैयार होंगे - सारा नक्शा ही बदल जायेगा - यह बात आ रही है!

लोगों को धोखे में रखा जा रहा

किन्तु, मैंने कहा कि विदेशी पूंजी के हाथ बहुत लम्बे हैं - एकदम खुला विद्रोह न हो, इसलिये पहले से ही कुछ गलत-फहमियां फैलाने का काम चल रहा है। एक बात यह कही जा रही है कि साहब, डंकेल पूरा कैसे खराब हो सकता है? जो लोगों को गुमराह कर रहे हैं, क्या वे यह जानते नहीं है कि यह अव्यवहार्य है? डंकेल में कहा गया है कि This is a package deal - लेना होगा तो पूरा लेना होगा - छोडना होगा तो पूरा छोडना होगा। यह कहना कि उसमें कुछ अच्छाई है, जरा विचार करो, क्या यह ईमानदारी की बात है? मान लीजिये, एक लड़की है और एक लड़का है। लड़का ऐसा है कि उसका चेहरा सुंदर है - Handsom है, लेकिन पीछे कूबड़ है। क्या आप लड़की को ऐसा उपदेश दे सकते हैं कि बेटी इसके साथ शादी कर लो! इसके सुंदर चेहरे का स्वीकार करो और इसके कूबड़ का त्याग कर दो! क्या ऐसा आप बोल सकते हैं? अरे, लेना होगा तो पूरे लड़के को लेना होगा उसके सुंदर चेहरे के साथ और उसके कूबड़ के साथ। छोड़ना होगा तो पूरा छोड़ना होगा। ये पैकेज डील की बात है। लेकिन लोगों को गुमराह करने की योजना विदेशियों ने बहुत पहले से की है और जो राज्यकर्ता उनके आशीर्वाद से, तृतीय विश्व के

देशों में आज पदासीन हैं, कोरिया जैसा एक छोटा सा देश छोड़ दीजिये - तो तृतीय विश्व के राज्यकर्ता और अमेरिका के बीच यह सांठगाठ है कि साहब आप जितना बोल रहे, उतना अगर हमने एकदम प्रगट कर दिया तो जनता में असंतोष भड़क जायेगा - हमारे खिलाफ विद्रोह हो जायेगा हमको अपदस्थ किया जायेगा - Dislodge किया जायेगा और हम Dislodge हो जायेंगे तो नये राज्यकर्ता आपके एजेन्ट के नाते कहां काम करेंगे? तो, आपके हित के लिये यह आवश्यक है कि राज्यकर्ता के रूप में हमें आपने प्रस्थापित रखना चाहिये - और इसलिये जनता के खिलाफ जाने वाली बातें एकदम उनको पता न चले और आर्थिक घटनाओं के बारे में जनता को अंधेरे में रखा जाए। इसलिये आप देखते हैं कि अखबारों में किसने किसकी टांग खींची है, किसने किसको गाली दी है - इसकी ही ज्यादा चर्चा आती है, लेकिन आर्थिक क्षेत्र की बड़ी बड़ी घटनाओं का भी उल्लेख नहीं होता - अपने देश की जनता को अंधेरे में रखने की यह व्यवस्था उन्होंने की है! धीरे धीरे आता है। जैसा अपने यहां कहा गया है कि हमने अभी डंकेल पर हस्ताक्षर नहीं किये हैं - सबको पूछे बगैर हम करने वाले नहीं है - पर आपको आश्चर्य होगा यह जानकर कि डंकेल की कई धाराएं - प्रावधाएं, जिन पर उन्होने अभी से क्रियान्वयन (Implementation) भी शुरू कर दिया है - चाहे Subsidy के बारे में हो, सार्वजनिक वितरण प्रणाली के बारे में हो या उत्तर प्रदेश के बारे में हो - शुरू भी कर दिया है और कहते हैं कि हमने कुछ नहीं किया है। पार्लियामेंट के पिछले चार सत्रों में, जब लोगों ने कहा कि डंकेल हमारे जीवन-मरण का प्रश्न है, इस पर सदन में चर्चा होनी चाहिये तो हमारे प्रधानमंत्रीजी इसे टालते रहे और पिछले सत्र में एक दिन लोकसभा को बढाया गया - उसमें डंकेल का - गॅट का उल्लेख आया! संसद के आखिरी दिन अंतिम आयटम के रूप में चर्चा के लिये इसे रखा गया - उसके पहले बिलकुल महत्व नहीं रखने वाले ऐसे ऐसे गैरे नत्थु खैरे आयटम रखे गये। तब अनेक सदस्यों ने कहा कि आप यह योजनापूर्वक टाल रहे हैं। कम से कम आप यहां हमें आश्वासन दीजिये कि जब तक इस पर पार्लियामेंट की सहमति प्राप्त नहीं हो जाती. हम इस पर हस्ताक्षर नहीं करेंगे। प्रधानमंत्री ने इस विषय में प्रथम ही (for the first time) इसका जवाब दिया और कहा कि 'मैं पार्लियामेंट की बहुत इज्जत करता हूं - सभी बातें आपके पूछकर ही होनी चाहिये, यह मैं मानता हूं। लेकिन यदि ग्लोबलाइजेशन की मांग रही और पार्लियामेंट के अगले सत्र के पहले हस्ताक्षर करना जरूरी हुआ तो मैं

पार्लियामेंट से पूछे बगैर हस्ताक्षर कर सकता हूं! पहली बार सचाई की बात उन्होंने पार्लियामेंट में कही।

एक बार फंसे तो . . . . .

तो, इस प्रकार लोगों को धोखा देने का काम चल रहा है। बहुत लोगों को इसका पता नही है कि डंकेल यह कोई मामूली समझौता नही है। बाकी जो समझौते हैं - International Monetary Fund, Multinationals और World Bank के साथ जो समझौते हैं, उन्हें, यदि दिल्ली की सत्ता बदल जाती है तो नया सत्ताधारी दल इन समझौतों को ठुकरा सकता है - Cancel कर सकता है । लेकिन डंकेल समझौते को इस तरह से इस तरह से ठुकराया नहीं जा सकेगा। हो सकता है कि दिल्ली में आज जो सत्ताधारी पार्टी है वह बदलकर दूसरी सत्ताधारी पार्टी सत्ता में आ जाये - उस पार्टी को भी यह अधिकार नहीं है कि डंकेल प्रस्ताव - जिस पर सरकार ने हस्ताक्षर किये हैं, उसे वह ठुकरा सके - क्योंकि यह एक 'इंटरनेशनल ट्रीटी' हो जाती है, इसलिये यह उनके लिये भी बन्धनकारक रहेगा और यदि ठुकराना है तो हिम्मत रखनी पड़ेगी - जागतिक युध्द के लिये अथवा जागतिक आर्थिक बहिष्कार के लिये तैयारी रखनी पड़ेगी - बाकी समझौतों के समान पार्लियामेंट के द्वारा कॅन्सल नहीं किया जा सकता - इस समझौते को एक विशेष प्रतिष्ठा - Status आ गई है।

पूंजीवाद भी टूटेगा

बहुत बार लोग ऐसा सोचते हैं कि भाई, इतना यदि खराब है तो बाकी लोग कैसे स्वीकार कर रहे हैं ? और, हमारे देश में तो प्रचार यह हो रहा है कि सभी देशों ने इसे स्वीकार कर लिया है। हमने दिल्ली में भी यह बात सुनी कि सब देशों ने यह स्वीकार कर लिया है, केवल भारत ही बचा है। यह वास्तव में गलत प्रचार है। मैं आपको यह बताना चाहता हूं कि ये अमरीका की जो गुंडागर्दी है या दादागिरी है - एक तो मैंने कहा कि अमरीका की अर्थव्यवस्था नीचे जा रही है और जैसे तेजी से वह नीचे जा रही है, अन्य देशों के शोषण करने की प्रक्रिया उतनी ही तेजी से बढ़ रही है। मैं आश्वासन पूर्वक आपको यह बताना चाहता हूं कि सन २०१० वा साल आते तक दुनिया का नम्बर एक का देश - यह जो स्थान अमरीका का है, वह खत्म होगा और जैसे कम्युनिज्म खत्म हुआ वैसे पूंजीवाद - (capatalism) भी टूट जायेगा। यह बात वे भी जानते हैं। उनके बड़े-बड़े शास्त्रज्ञ जैसे मॅनेजमेंट गाइन्स के पीटर ड्रकर्स हैं, कैपिटलिज्म के आज के प्रवक्ता सॅण्डरसन हैं - सबने कहा है कि Capitalism टूट रहा है -

अमेरिका टूट रहा है। इसको कैसे बचाना ? अपने सहारे इसको नहीं बचा सकते इसलिये राक्षसी-दानवी मार्ग सोचा गया कि दुनिया के बाकी के देशों को, उनका शोषण करते हुए, उनकी अर्थव्यवस्था अपने कब्जे में लेते हुए, अपनी मृत्यु को २५-३० साल तक आगे ढकेलना - मरनेवाले तो हैं, लेकिन २०-३० साल तक और जिन्दा रहेंगे, इसके लिये दुनिया के बाकी सब देशों को खा डालना - यह राक्षसी प्रवृत्ती लेकर अमरीका का काम चल रहा है। हमारे यहां के कुछ रोमान्टिक लोग कहते हैं - हम तो डूबे हैं सनम, तुमको भी लेकर डूबेंगे। यह अमरीका की प्रवृत्ती है। वो डूबनेवाले है - बच नहीं सकते - लेकिन खुद डूबने के पहले हम सब लोगों को लेकर डूबना चाहते हैं।

इच्छाशक्ति का अभाव

हमारे देश के कुछ लोग कहते हैं कि अरे, इनका आप क्या विरोध कर सकते हैं? दुनिया की सारी सम्पत्ति इनके पास है, सरकार इनके साथ है, आप क्या कर सकेंगे? फिर विरोध नहीं कर सकते तो स्वीकार ही कर लो, काहे के लिये झगड़ा करते हो? हमारे यहां देहाती लोग कहते हैं, कहां तक सच है, मुझे पता नहीं, कि घोड़ा जब जंगल में से जाता है और उस जंगल में शेर है, घोड़े को गंध आ जाती है कि इधर शेर है - तो वह डर जाता है, घबराता है, लेकिन ऐसी कुछ प्रवृत्ति है कि शेर जिस दिशा में है, उसी दिशा में उसके पैर चल पड़ते है। वह अपनी मृत्यु की दिशा में खींचा जाता है। वैसे ही हमारे यहां के जो लोग, जिनके अन्दर राष्ट्रीय इच्छा शक्ति नहीं है - जिनके अन्दर राष्ट्रभक्ति न होने के कारण इच्छा-शक्ति नहीं है - वो कह रहे हैं कि हमारे विरोध का क्या फायदा होगा? दुनिया उनके साथ हैं, हम तो वैसे ही मरनेवाले हैं - घोड़े के समान अपनी मृत्यु की ओर जाना चाहते हैं।

जो यह जानते हैं कि राष्ट्र गुलामी की ओर जा रहा है, फिर भी यह कहते हैं कि विरोध करने से क्या होगा? उनका यह सोचना गलत है। विरोध करने से धीरे धीरे माहौल बनता है। आप जानते हैं, कारगिल का मामला हुआ - वहां कच्छ-भुज में नमक बनाने के मामले में कई बातें हुईं, सब जानते हैं - उसे पुनः दोहराने की आवश्यकता नहीं है। नेताओं ने स्टेटमेन्ट्स दिये - वक्तव्य प्रसारित किये उनका काम ही वक्तव्य देने और अखबारों में अपनी छबि देखने का होता है। भारतीय किसान संघ ने २५ जून को कच्छभुज के किसानों का वहां बड़ा प्रदर्शन (डिमान्स्ट्रेशन) किया है - प्रदर्शन करनेवाले किसानों की संख्या ५० हजार थी, जिनमें ८ हजार महिला किसान थीं - और फिर २५ सितम्बर को

गुजरात की राजधानी गांधीनगर में ४ लाख से अधिक किसानों का प्रदर्शन हुआ - इस प्रदर्शन के बाद कारगिल कम्पनी का वक्तव्य आया कि हम गुजरात से बोरिया-बिस्तरा लपेट कर जा रहे हैं, फिर वापिस नहीं आयेंगे।

युरोप में भी विरोध

इनका टेक्नीक ऐसा है कि आर्थिक क्षेत्र में क्या घटनाएं हो रही हैं, जनता को पता ही नहीं चलने देना - और यह बात नहीं कि इसके केवल हम भुक्तभोगी हैं - हमारे तृतीय विश्व के देशों में तो जागृति हो रही है - कई लोगों से हमारी मुलाकातें भी हुई हैं। श्रीलंका, सिंगापुर, हांगकांग, फिलीपीन्स - ऐसे कई देशों के लोगों के साथ हमारी मुलाकातें हुई हैं - वे भी, जैसा हम यहां स्वदेशी जागरण मंच चला रहे हैं, अपने देशों में जनता को जागृत करने का काम कर रहे हैं - इस दिशा में काम शुरु हुआ है। और, वहां भी यही प्रक्रिया है कि लोगों को अंधेरे में रखना और जब आसमान टूट पड़ता है तो लोग सोचते हैं, अब क्या करना ? अब तो तैयारी करने के लिये भी समय नहीं है। अभी तक डंकेल का काम रुका हुआ है तो वह हमारे कारण नहीं रुका, तो वह युरोपींयन कम्युनिटी के कारण रुका है। युरोपियन कम्युनिटी के १२ देशों में भी यही प्रतिक्रिया हुई है। वहां के किसानों को पता चला कि यह कितनी घातक, कितनी खतरनाक बात है तो अब वहां भी इसके विरोध में जन आंदोलन उभरने लगे है। फ्रांस में किसानों की संख्या सबसे ज्यादा है - युरोप के १२ देशों में से १० प्र.श. किसानों की संख्या फ्रांस में है। कुछ सप्ताह पहले वहां के किसानों ने 'फ्रांस-बंद' का कार्यक्रम लिया। आपको मालुम होना चाहिये कि फ्रांस की सरकार ने इस हस्ताक्षर किये हैं। फ्रांस के किसानों ने सरकार से मांग की है कि आपने जो गलत ढंग से उस पर हस्ताक्षर कर दिये हैं, उसको वापस लो - अपने हस्ताक्षर Widhdraw करो। किसानों के उग्र आंदोलन से चिंतित फ्रांस की सरकार ने किसान आंदोलन का बहाना बताकर अमेरिका को बताया है कि हस्ताक्षर किये हैं, यह बात सही है, लेकिन किसान विरोध कर रहे हैं, हमें पुनर्विचार करना पड़ेगा।

जब मैं अमेरिका का नाम लेता हूं तो मेरा मतलब अमेरिकन जनता से नहीं है। ये राक्षसी लोग सभी अमरीकी जनता नहीं हैं। यह तो अमरीका के सत्ताधारी लोग और अमेरिका के कैपिटेलिस्ट (पूंजीवादी) का सारा खेल है। वे केवल तृतीय विश्व के देशों को ही नहीं छेड़ते बल्कि युरोप के देशों का भी शोषण करना चाहते हैं। इतना ही नहीं अपनी जनता का भी शोषण करना चाहते हैं।

इसीलिये तीन साल पहले नार्थ अमेरिकन फ्री ट्रेड एग्रीमेंट - 'नाफ्टा' नामक एक एग्रीमेन्ट हुआ। इनकी पद्धति भी बड़ी चालाकी भरी होती है। जब कोई समझौता करते हैं तो उसके सारे ब्यौरे Details उसका सारा तफसील प्रकाशित नहीं करते - आधी चीजें Publish करते है। अतः जनता को पता नहीं चल पाता। इसलिये जब यह एग्रीमेन्ट हुआ तब किसी ने खास विरोध नहीं किया। जब अमल करना शुरु हुआ तो मेक्सिको, युनाइटेड स्टेट्स और कैनेडा के गरीब-मजदूर लोगों को पता चला कि यह हमारे लिये बड़ा खतरनाक है - तब उन्होने उसके खिलाफ आंदोलन शुरु किया। वहां की सरकारों ने पार्लियामेंट में अपने दल के बहुमत के बल पर इस एग्रीमेन्ट पर स्वीकृति की मोहर लगा दी किन्तु अब जनता के आंदोलन के सामने उन्हे भी पुनर्विचार के लिये बाध्य होना पड़ रहा है। कैनेडा में तो हाल ही में सम्पन्न चुनावों में जनता ने इस पर हस्ताक्षर करनेवाले सत्ताधारी दल को ही उखाड़ फैंका - उसे सत्ता से अपदस्थ कर दिया - उसके केवल दो ही सदस्य चुनकर आये - उनको उखाड़ने के जो प्रमुख कारण थे उनमें एक यह था कि आपने जनता - विरोधी - देश विरोधी समझौते पर हस्ताक्षर किये - जनता ऐसी सरकार को बर्दाश्त नहीं करेगी। वहां अब जो नई सरकार आयी है उसने भी फ्रांस की तरह इस समझौते पर नये सिरे से पुनर्विचार का इरादा घोषित किया है। कैनेडा के नये प्रधानमंत्री ने समझौते पर Renegotiation की मांग की है।

वैसे अमरीका में हिन्दुस्तान की खबर को कोई ज्यादा महत्व नहीं देता। यदा-कदा कोई छोटी सी खबर वहां छप जाती है। आपको आश्चर्य होगा यह जानकर कि यहां जो कारगिल का झमेला चला - उसके बारे में वहां के अखबारों में खबर छपी। वहां कुछ पर्यावरणवादी - मानवतावादी संस्थांए हैं, जो विशुध्द अमरीकन लोगों की ही हैं - ऐसी कुल १२ संस्थाओं ने एकत्रित आकर कारगिल कम्पनी के बारे में शोध किया और वे इस निष्कर्ष पर पहुंची कि कारगिल की जो शर्तें हैं वे अमानुष हैं - मानवता विरोधी हैं - पर्यावरण बिगड़ जायेगा - मनुष्यों का सन्तुलन बिगड़ जायेगा - इन संस्थाओं ने कारगिल के काम पर रुकावट डालने का आग्रह करते हुए तीव्र प्रदर्शन किया। मतलब यह कि जब लोगों के ख्याल में इसके खतरनाक पहलू आते हैं, तब विरोध शुरु होता है और लोगों में स्वाभिमान जागृत होता है।

स्वदेशी आंदोलन फैल रहा

आज तृतीय विश्व के सभी देशों में जैसा हमारा स्वदेशी जागरण-मंच का

कार्य चल रहा है, वैसा ही स्वदेशी आंदोलन शुरु हुआ है। स्वदेशी की भावना उस सभी देशों में जागृत की जा रही है। स्वदेशी जब कहा जाता है तो उसका सम्बन्ध केवल वस्तुओं से नहीं है - स्वदेशी एक भावना है, एक Spirit है। स्वदेशी का मतलब होता है कि हरेक देश अपनी संस्कृति के अनुसार, अपनी अपनी पद्धति के अनुसार अपना विकास करे - इसका नाम स्वदेशी है। अब यह भावना विभिन्न देशों ने किस तरह बढ़ रही है, इसकी जानकारी हाल ही में घटित कुछ घटनाओं से मिलती है। अभी दक्षिण-पूर्वी एशियायी देशों की कान्फ्रेन्स होने वाली थी। अमरीका ने कहा कि हम एक पर्यवेक्षक के रुप में, Observer के नाते इस परिषद में उपस्थित रहना चाहते है। मलयेशिया के प्रधानमंत्री महादिर मोहम्मद कट्टर देशभक्त हैं, बुद्धिमान भी है। उन्होंने सब देशों को लिखा कि अमरीका की मांग ठुकराना चाहिये, उसे स्वीकार नहीं किया जाना चाहिये। हमारी South east Asia के Conference में हम अमरीका का पर्यवेक्षक Observer कतयी बर्दाश्त नहीं करेंगे - यदि अमरीका के दबाव में आकर आपने उनके Observer को इस परिषद में उपस्थित रहने की अनुमति दी गई तो मलयेशिया इस परिषद में भाग नहीं लेगा। मलयेशिया जैसा छोटा सा देश इतनी हिम्मत दिखा सकता है, हमारे प्रधानमंत्री नहीं दिखा सकते! क्या कारण है, यह आप समझ सकते हैं।

हमारे यहां माइकेल जॅक्सन का कार्यक्रम तय हुआ था - यह अलग बात है कि वह अब अस्पताल में है। सब जानते हैं कि माइकेल जॅक्सन केवल भारतीय नहीं बल्कि एशियायी संस्कृति को नष्ट करने का कार्यक्रम कर रहा है। फिर भी हमारे देश में उसका स्वागत करने की आतुरता दिखाई जा रही है। लेकिन चीन और कोरिया जैसे दो देश निकले जिन्होने कहा कि मायकेल जॅक्सन को हम हमारे यहां कदम नहीं रखने देंगे, क्योंकि उसके कार्यक्रम सांस्कृतिक आक्रमण हैं। यह प्रतिबन्ध करने वाला केवल चीन जैसा बड़ा देश ही नहीं, कोरिया जैसे छोटा देश भी यह साहस दिखा सका है - लेकिन हमारे प्रधानमंत्री नहीं दिखा सकते! वे तो राजीव फाउण्डेशन के लिये मायेकल जॅक्सन का स्वागत करने तैयार हैं।

तो, स्वदेशी एक स्पिरिट है - इस स्पिरिट को समझेंगे तो फिर डंकेल का कैसा विचार करना हम समझ सकते हैं। इंग्लैण्ड में महारानी ने सोचा कि ब्रिटिश कार इतनी अच्छी नहीं, जितनी जर्मन कार है - महारानी के लिये जर्मन कार का ऑर्डर चला गया - बात जब फैली तो जनता ने इसका तीव्र विरोध

किया - वहां भी प्रदर्शन हुए - आखिर वह ऑर्डर कैन्सल करनी पड़ी - ज्यादा सुविधाजनक जर्मन कार की बजाय कम सुविधाजनक ब्रिटिश कार में ही बैठने के लिये महारानी को बाध्य होना पडा । यह है, स्वदेशी का spirit । हमारे देश में वियतनाम के प्रेसीडेण्ट हो ची मिन्ह आये थे - जैसे वे हवाईजहाज से नीचे उतरे - पत्रकारो ने उनका स्वागत किया - उनकी पैण्ट को एक जगह सिलाई थी - पैण्ट फट गई होगी इसलिये उसे सिलाया गया था । अब उनके देश में जैसा कपडा बनता है, वह ज्यादा अच्छा नही बनता, इसलिये जल्दी फट जाता है । एक पत्रकार ने पूछा - प्रेसीडेण्ट महोदय, आपकी पैण्ट को यहां सिलाई है, क्या बात है ? क्या पैण्ट फट गया है ? इस पर हो ची मिन्ह का जवाब आया - क्षमा कीजिये, मेरा देश इतना ही खर्चा कर सकता है, इससे ज्यादा खर्चा नहीं कर सकता My country can afford only this much. क्या आप समझते हैं कि एक देश का प्रेसीडेण्ट विदेश का अच्छा कपडा नहीं पहन सकता ?तो यह स्पिरिट का सवाल है । स्वदेशी की भावना का प्रगटीकरण है । आप जानते होंगें कि गांधीजी का दांडी - मार्च हुआ । उसके बाद गांधी - इर्विन के बीच वार्ताएं हुयीं । एक तरफ इर्विन बैठे हैं - सामने गांधीजी बैठे हैं। चर्चा हो रही है, चाय का समय आया तो चाय मंगवाई गई। गांधीजी चाय नहीं लेते थे अतः उनके लिये नींबू-पानी बुलवाया गया। गांधीजी ने जानबूझकर इर्विन के देखते-देखते अपने पास की एक पुड़िया निकाली - उसे धीरे से खोला और नींबू-पानी में डालकर उसे घोला और पी गये। इर्विन ने पूछा यह क्या है? तो गांधीजी ने कहा कि आपके नमक कानून का उल्लंघन करते हुए मैंने जो नमक बनाया था, उसकी पुड़िया मैं अपने साथ लाया था - वही नमक मैंने अपने नींबू-पानी में मिलाया। यह स्वदेशी की भावना है - यही स्वदेशी का Spirit है। केवल विदेशी वस्तुएं कौन सी हैं, देशी कौनसी हैं, यह बात नहीं है।

स्वदेशी की यह भावना जागृत होनी चाहिये। और, जैसा मैंने कहा कि हमारे यहां अन्तर्राष्ट्रीयता यह राष्ट्रीयता की चेतना का विकास है - Internationlism is the flower in the national conciouoness - उनमें परस्पर विरोध नहीं है। हमारे यहां मानवीय चेतना के विकास के विभिन्न स्तर हैं, Stages हैं। व्यक्ति की अपने चेतना है - उसका विकास होता है तो परिवार की चेतना उसकी अपनी चेतना बन जाती है - फिर यह परिवार की चेतना विकसित होकर राष्ट्र की चेतना से एक रुप हो जाती है और उसके विकास के बाद मानवता की चेतना आती है - हमारे धर्म की अपेक्षा तो यह है कि इससे

डंकेल प्रस्तावों के खतरों से देश के किसानों को अवगत कराने तथा उसके विरोध में जनमत जागृत करने के उद्देश्य से विगत १९ नवम्बर से ६ दिसम्बर १९९३ तक भारतीय किसान संघ और स्वदेशी जागरण मंच ने विदर्भ के आमगांव से खामगांव तक किसान दिंडी का आयोजन किया था। यह दिंडी जब नागपुर पहुंची तो दि. २७ नवम्बर को नागपुर के चिटणीस पार्क में एक विशाल जनसभा का आयोजन किया गया। इस सभा को देश के महान विचारक, विख्यात श्रमिक नेता और भारतीय किसान संघ संस्थापक माननीय श्री दत्तोपंतजी ठेंगडी ने संबोधित किया। उनका पूरा भाषण ही संपादित रूप में इस पुस्तिका में प्रस्तुत है।

- प्रकाशक